तपोवन की कहानियां



तपोवन की कहानियां

विष्णु प्रभाकर



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

मूल्य : चालीस रुपये (Rs. 40.00)

संस्करण : 2006
ISBN-13 : 978-81-7028-471-0
ISBN-10 : 81-7028-471-6
TAPOVAN KI KAHANIYAN (Story)
by Vishnu Prabhakar

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006

दो शब्द

प्यारे बच्चो, ये कहानियाँ छोटे बच्चों के लिए नहीं है। बारह वर्ष और उससे अधिक आयु के बच्चों के लिए यानी किशोरों के लिए हैं। यह सभी कहानियाँ हमने प्राचीन साहित्य, धार्मिक और लोक साहित्य में से चुनकर पाँच संग्रहों में संकलित की हैं। एक कहानी ऐतिहासिक युग की भी है। ये सब कहानियाँ हमें हमारी संस्कृति से परिचित कराती हैं। मनुष्य को कैसे रहना चाहिए। उसके कर्तव्य क्या हैं, इन बातों का हमें अपने जीवन को जीने की राह दिखाता है। 'ब्राह्मण कौन है, हमें क्रोध नहीं करना चाहिए, और ज्ञान का सही अर्थ क्या है।' ऐसे सभी प्रश्नों के उत्तर इन कहानियों के द्वारा समझाए गए हैं। जब तुम इन्हें पढ़ोगे तो तुम्हें पता लगेगा।

कई कहानियाँ बड़ी अनोखी हैं। पढ़ना शुरू करोगे तो समझ नहीं पाओगे, लेकिन अन्त में कहानीकार जब उन वाक्यों का सही अर्थ बताता है तब पता लगता है कि कितनी सही बात कही गई है। जैसे एक कहानी है, 'धर्म का रहस्य।'

एक दिन एक परिवार में एक कम आयु के मुनि भिक्षा माँगने के लिए गए। उन्हें देखकर घर की बहू ने कहा "मुनिवर अभी तो सबेरा है।"

मुनि ने उत्तर दिया, "बहन मुझे काल का पता नहीं चलता।"

फिर मुनि ने पूछा, "तुम्हारा पुत्र कितने वर्ष का है।"

बहू ने उत्तर दिया, "सोलह वर्ष का।"

मुनि ने पूछा, "तुम्हारे पति की आयु क्या है?"

बहू ने उत्तर दिया, "आठ वर्ष।"

मुनि ने पूछा, ''और ससुर।''

बहू बोली, ''वह तो अभी पालने में ही झूल रहे हैं।''

और भी ऐसे ही प्रश्न पूछे, मुनि ने। बहू के ससुर सब कुछ सुन रहे थे। बड़ा क्रोध आया उन्हें घर की इज्जत ख़ाक में मिला रही है। जब मुनि भिक्षा लेकर चले गए तो वृद्ध पुरुष ने बहू को खूब डांटा। बहू ने शांत भाव से कहा, ''आप मुझे डाँटे यह आपको शोभा नहीं देता, पिताजी। मैं मुनि के प्रश्नों का उत्तर कैसे न देती। आप उनके गुरु के पास जाइए और उनसे कहिए कि वह मुनि फिर इधर न आवे।''

वृद्ध पुरुष को यह बात जँच गई। वह ऐसे मुनियों को डाँटना भी चाहते थे। इसलिए वह तुरन्त उसके गुरु के पास पहुँचे। उनसे मुनि की शिकायत की। गुरुजी ने उन मुनि को बुला भेजा। मुनि ने सब बातें सुनकर पूछा, ''गुरुजी भला इनसे पूछिए, मैंने कौन-सी अशोभनीय बातें कीं।''

वृद्ध बोले, ''मेरी पुत्रवधू ने इससे कहा, अभी तो सवेरा ही है। इसने उत्तर दिया, 'मैंने काल को नहीं जाना।' भला क्या यह बात सच हो सकती है।'

शिशु मुनि बोले, ''जी, बहन ने मुझसे पूछा था, ''आपने इस उभरती उम्र में संन्यास का कठोर मार्ग क्यों ग्रहण किया।'' मैंने उत्तर दिया, 'बहन काल अर्थात् मृत्यु का तो कोई भरोसा नहीं।' 'गुरुदेव इसमें तो कोई अशिष्ट बात नहीं है।'

वृद्ध ने कहा, ''अच्छा इसे भी छोड़िए, मेरी पुत्रवधू ने अपने पुत्र की आयु सोलह वर्ष, पति की आयु आठ वर्ष और मुझ वृद्ध पुरुष को पालने में झूलने वाला ही बताया था, भला यह बात सही कैसे हो सकती है?''

शिशु मुनि ने उत्तर दिया, ''गुरुदेव मैंने बहन से पूछा था कि तुम्हारे घर में कोई 'धर्मज्ञ' है या नहीं, इस पर उसने उत्तर दिया। 'मेरा पुत्र जन्म से ही धर्म-कर्म जानता है और उसकी आयु सोलह वर्ष है। मेरे पति पहले तो परम नास्तिक थे, किन्तु अब मेरे समझाने-बुझाने से धर्म के मर्म को समझने लगे हैं। और आठ वर्ष से वह भी धर्मनिष्ठ हैं, लेकिन मेरे ससुर आज भी धर्म की बात सुनना नहीं चाहते।'' यह वृद्ध

पुरुष धर्म का रहस्य जानते तो आपके पास आते ही नहीं।

''यह सुनकर वृद्ध पुरुष लज्जित हुए। वह अब धर्म के रहस्य और शक्ति को समझ गए थे।''

है ना यह कहानी पहेलियों जैसी, तो इन कहानियों के नाना रूप हैं। वह सब प्राचीन काल की संस्कृति पर प्रकाश डालती हैं।

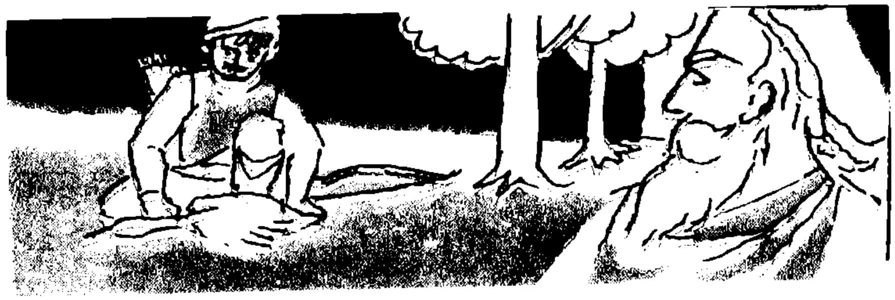
इन कहानियों की पुस्तकों के साथ-साथ एक और पुस्तक है, ''तपोवन की कहानियाँ, ये कहानियाँ दूसरी कहानियों से अलग हैं। यह प्राचीन काल के परम विद्वान महर्षियों की कहानियाँ हैं। उनके तप, त्याग और साधना पर प्रकाश डालती हैं। ये महर्षि आश्रमों और मठों में रहते थे। कुछ ऐसे आश्रम और मठ बन गए थे कि जो भी महर्षि उस गद्दी पर बैठता, वह उसी नाम से जाना जाता था। जैसे आज शंकराचार्य जी की गद्दी है। जो व्यक्ति उस पर बैठेगा, वह शंकराचार्य के नाम से ही जाना जाएगा। प्राचीन काल में भी ऐसी ही गद्दियाँ थीं या आश्रम थे। जैसे अगस्त मुनि, वशिष्ठ जी और ऋषि विश्वामित्र आदि। अगस्त मुनि का आश्रम हिमालय में ही माना जाता है, विन्ध्यांचल पर्वत पर भी, तमिल प्रदेश में भी। और यहाँ तक कि भारत के बाहर इण्डोनेशिया में भी। अब एक ही व्यक्ति प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक कैसे रह सकता है। वशिष्ठ जी और विश्वामित्रजी राजा हरिश्चंद्र के समय में भी हुए हैं और राम के समय में भी। तो यह शंकराचार्य के समान गद्दियाँ थीं, जो इन पर बैठता वह इसी नाम से पुकारा जाता था।

यह सब बातें तो तुम बड़े होकर ठीक-ठीक समझोगे, अभी तो तुम इन्हें पढ़ो और इनका अर्थ समझो। समय बदल गया है। कहानियाँ कहने का ढंग भी बदल गया है। जीवन के मूल्य भी बदल गए हैं, पर अपने प्राचीन साहित्य से परिचित होना भी आवश्यक है।

विष्णु प्रभाकर

23.1.2004

सूची



महर्षि वाल्मीकि

महर्षि वाल्मीकि का नाम इसलिए प्रसिद्ध है कि उन्होंने रामायण लिखी थी। वह उसी समय में हुए थे जब रामचन्द्र जी हुए। ऐसा लगता है, महर्षि वाल्मीकि और आदिकवि वाल्मीकि दो व्यक्ति थे। बाद में दोनों की कथा मिलकर एक हो गई और अब उन्हें अलग करना बड़ा कठिन है। महर्षि वाल्मीकि का आश्रम तमसा नदी पर गंगा के दक्षिण में था। वह कुलपति थे। उनके आश्रम में दस हज़ार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। उनका पालन-पोषण करते हुए महर्षि उनको शिक्षा देते थे।

कथा आती है कि अपने शुरू के जीवन में वह डाकू थे। जन्म से ब्राह्मण होने पर भी वे किरातों के साथ रहते और चोरी करते थे। घोर जंगल में रास्ते के पास छिपे रहते और उधर से आने-जाने वाले यात्रियों को मारकर उनका धन छीन लेते थे। एक बार ऐसा हुआ कि सात मुनि उधर से आ रहे थे। नारद जी भी उनमें थे। वाल्मीकि ने नारद जी को पकड़ लिया। नारद तो देवर्षि थे। वह घबराए नहीं। बोले, ''तुम चोरी करते हो और चोरी करना पाप है।''

वाल्मीकि ने कहा, ''मैं अपने लिए चोरी नहीं करता। परिवार का पालन-पोषण करने के लिए चोरी करता हूँ।''

नारद बोले, ''अच्छा, क्या तुम्हारा परिवार इस पाप में सहयोगी बनने को तैयार है ?''

वाल्मीकि ने कहा, ''यह तो मैंने उनसे कभी नहीं पूछा।''

नारद ने कहा, ''तो आज पूछो। डरो नहीं, मुझे तुम बाँधकर अपने साथ ले जा सकते हो।''

वाल्मीकि नारद जी को बाँधकर अपने घर ले गए। उन्होंने अपने पिता, माता और स्त्री, सबसे बारी-बारी पूछा, ''लोगों को मारकर और उनका धन चुराकर मैं जो पाप करता हूँ क्या आप मेरे साथ उस पाप का दण्ड भोगने को तैयार हैं?''

सब का एक ही उत्तर था, ''हमारा पालन-पोषण करना तुम्हारा कर्तव्य है। पाप हो या पुण्य, उसके भागी तुम ही हो। तुम कैसे और कहाँ से धन लाते हो, इसकी चिन्ता हमें नहीं करनी है।''

यह उत्तर सुनकर वाल्मीकि ठगे-से देखते रह गए। सोचने लगे, अब तक मैंने जितना भी पाप किया है उसका लाभ तो सबने उठाया, दण्ड अकेला मैं ही भोगूँगा। नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मैं दूसरों के लिए चोरी नहीं करूँगा।

यह सोचते हुए वह नारद के पास लौट आए। उन्हें बहुत दुःख हो रहा था। उनकी आँखें भर आईं। उन्होंने नारद जी से कहा, ''मुझे कोई रास्ता बताइए। मैं पापों से मुक्ति चाहता हूँ।''

नारद बोले, ''तुम राम का नाम जपा करो। सब ठीक हो जाएगा।''

वाल्मीकि चोरी करना छोड़कर राम का नाम जपने लगे। लेकिन वह बिलकुल अनपढ़ थे। मूर्ख थे। राम का नाम भी



ठीक न लेकर 'मरा-मरा' जपने लगे। लेकिन वे इतना मन लगाकर जप कर रहे थे कि भूख-प्यास की भी चिन्ता नहीं रही। कहते हैं, वे वर्षों तक एक ही स्थान पर बैठे रहे; यहाँ तक कि उनके शरीर के चारों ओर दीमकों ने बांबी बना ली। बांबी को वल्मीक कहते हैं इसीलिए उनका नाम वाल्मीकि पड़ा। पहले उनका नाम रत्नाकर था। उनकी तपस्या से ब्रह्मा जी बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया, "तुम्हें राम के दर्शन होंगे।"

इस प्रकार रत्नाकर डाकू से तपस्वी वाल्मीकि बनकर वे तपसा के किनारे आश्रम बनाकर रहने लगे और धीरे-धीरे महर्षि का पद पाया। कहते हैं, एक दिन आश्रम में घूमते हुए उन्होंने एक बहेलिये को देखा। उस बहेलिये ने उनके देखते-देखते क्रौंच पक्षी के जोड़े में से नर-पक्षी को तीर चलाकर मार डाला। अपने साथी को मरा हुआ देखकर मादा-पक्षी बुरी तरह रोने लगी। यह देखकर महर्षि बहुत दुःखी हुए। उनके मुख से बहेलिये को शाप देने के लिए एक श्लोक निकला। उससे पहले संसार में किसी ने भी कविता नहीं की थी। वह पहली कविता थी।

इसीलिए महर्षि वाल्मीकि को 'आदिकवि' भी कहा जाता है।

कथा आती है कि वनवास के बाद रामचन्द्र जी जब अयोध्या लौटकर राज्य करने लगे थे तब धोबी ने सीता पर अपवाद लगाया था। कहा था, 'सीता रावण के पास रह चुकी है इसलिए वह अपवित्र है। राम उसे अपने पास नहीं रख सकते।'

यह सुनकर राम बहुत दुःखी हुए थे। लेकिन वह राजा थे। उन्होंने सीता को धोखे से वन में भेज दिया। वहाँ सीता जी महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहने लगीं। यहीं उनके दो पुत्र लव और कुश का जन्म हुआ। महर्षि वाल्मीकि ने लव-कुश को सब विद्याएँ सिखाई थीं। उन्होंने रामायण की रचना की थी। वह भी उन दोनों बच्चों को याद करा दी थी। उन्होंने सीता को राम से मिलाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु वे सफल नहीं हो सके। सभी जानते हैं कि सीता धरती में समा गई थी। तब महर्षि ने राम के दोनों पुत्रों को राम को सौंप दिया था और अपने आश्रम में आकर रहने लगे थे।

वाल्मीकि एक हों या दो, इस कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयत्न करने पर बुरे से बुरा आदमी भी महान से महान हो सकता है। जब तक रामायण संसार में प्रसिद्ध है तब तक वाल्मीकि को कोई नहीं भूल सकता।



महर्षि वशिष्ठ

महर्षि वशिष्ठ का नाम तो तुम सबने अवश्य ही सुना होगा। जिसने भी रामचन्द्रजी का नाम सुना है, उसने वशिष्ठ का नाम भी अवश्य ही सुना है। ये पहले ऋषि हैं, जिनके बारे में हमें ठीक-ठीक मालूम है कि वशिष्ठ एक उपाधि थी। वह उस प्रत्येक व्यक्ति को मिलती थी, जो उस गद्दी पर बैठता था। प्राचीन साहित्य में हमें कई वशिष्ठों के नाम मिलते हैं, जैसे देवरात, मैत्रावरुण आपव और श्रेष्ठभाज आदि। वशिष्ठ अपने समय के सबसे अच्छे ब्रह्म-ज्ञानी, सबसे बड़े तपस्वी, विद्वान स्मृति तथा धर्मशास्त्र के रचयिता हुए हैं। लेकिन उनका सबसे बड़ा गुण यही था कि वे बहुत ही सहिष्णु और क्षमाशील थे। इसीलिए उन्हें 'ब्रह्मर्षि' की उपाधि मिली थी।

एक वशिष्ठ तो वे थे ही जो रामचन्द्रजी के पिता महाराज दशरथ के राज-पुरोहित थे। असल में वशिष्ठ लोग सूर्यवंशी राजाओं के पुरोहित ही होते थे। तुम सबने सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कहानी तो सुनी ही होगी, उनके पिता त्रिशंकु और उनके पुत्र रोहित इन तीनों के काल में भी वशिष्ठ ही पुरोहित थे। रामचन्द्रजी और उनके पुत्र के समय भी वशिष्ठ ही पुरोहित थे। इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि वशिष्ठ केवल राजकुमारों को शिक्षा ही नहीं देते थे, यज्ञ आदि ही नहीं कराते थे, बल्कि

राजकाज चलाने के लिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण परिषद थी, उसके भी वे सदस्य थे।

महर्षि वशिष्ठ इसलिए भी बहुत प्रसिद्ध हैं कि उनका महर्षि विश्वामित्र से वैर था। दोनों में अनेक वर्षों तक झगड़ा चलता रहा था। लेकिन महाराज दशरथ के समय जो वशिष्ठ थे, उनका विश्वामित्र से वैर नहीं था। जब राक्षसों का विनाश करने के लिए विश्वामित्र रामचन्द्रजी को माँगने के लिए अयोध्या आए थे, तब राजा दशरथ राम को वन भेजने के लिए तैयार नहीं थे। उस समय महर्षि वशिष्ठ ने ही राजा को यह सलाह दी थी कि रामचन्द्रजी को महर्षि विश्वामित्र के साथ भेज दें। विश्वामित्रजी केवल तपस्वी ही नहीं हैं, युद्ध विद्या के जानने वाले भी हैं। वे रामचन्द्रजी को शिक्षा भी देंगे और उनकी रक्षा भी करेंगे।

लेकिन इससे बहुत पहले जो महर्षि वशिष्ठ थे, उनका विश्वामित्र से घोर युद्ध हुआ था। इन वशिष्ठ ऋषि का नाम देवराज था और विश्वामित्र उस समय एक प्रसिद्ध राजा थे। एक बार कहीं से लौटते हुए वे महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में ठहरे। महर्षि के पास नन्दिनी नाम की एक गाय थी। वह कामधेनु की पुत्री थी और उससे जो कुछ भी माँगा जाता था, वही वह दे सकती थी। महर्षि ने उससे नाना प्रकार के पकवान और मिठाइयाँ माँगीं। विश्वामित्र और उनकी सेना ने खूब भोजन किया। विश्वामित्र इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने महर्षि से कहा, ''यह गाय आप मुझे दे दीजिए क्योंकि ऐसी गाय तो राजा के पास ही रहनी चाहिए।'' गाय तो इन्द्र की थी। महर्षि कैसे दे सकते थे ! उन्होंने मना कर दिया। विश्वामित्र राजा थे। यह सुनकर क्रोध में भर उठे और उन्होंने बल-प्रयोग द्वारा गाय ले

जानी चाही। कहते हैं कि उस समय गाय के शरीर से अनेक योद्धा पैदा हुए और उन्होंने विश्वामित्र की सेना को मार डाला।



यह देखकर विश्वामित्र के क्रोध का कोई अन्त नहीं रहा। उन्होंने बार-बार महर्षि वशिष्ठ के आश्रम पर चढ़ाई की, लेकिन महर्षि तो परम तपस्वी थे। उनके तप के प्रभाव से हर बार विश्वामित्र की पराजय हुई। विश्वामित्र ने महर्षि के सभी पुत्रों को भी मार डाला, लेकिन उनको फिर भी क्रोध नहीं आया। अब तो विश्वामित्र चकित रह गए। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि राजा के बल से तपस्वी का बल बड़ा होता है। मैं भी तप करके ब्रह्मर्षि बनूँगा।

उन्होंने बहुत कठोर तप किया, किन्तु वे क्रोध को नहीं छोड़ सके। सब ऋषियों ने और देवताओं ने उनसे यही कहा कि जब तक महर्षि वशिष्ठ आपको ब्रह्मर्षि नहीं कहते, तब तक

आप ब्रह्मर्षि नहीं बन सकते।

विश्वामित्र यह सुनकर और भी क्रुद्ध हुए। उन्होंने बार-बार नए-नए अस्त्र लेकर वशिष्ठ पर चढ़ाई की, पर उनके ब्रह्म तेज के सामने एक न चली। एक बार रात का समय था। विश्वामित्र ने निश्चय किया कि मैं वशिष्ठ को मार डालूँगा। वे छिपकर आश्रम में पहुँचे। उस समय महर्षि वशिष्ठ अपनी पत्नी अरुंधती के साथ बैठे हुए थे और उनसे कह रहे थे, "आज तो ऐसी चाँदनी फैली हुई है, जैसे सारे संसार में विश्वामित्र जी की तपस्या का तेज फैला हुआ है।" यह सुनते ही विश्वामित्रजी चकित रह गए। बार-बार उनके मन में उठने लगा कि मैं इतना दुष्ट हूँ कि रात के समय छिपकर मारने के लिए आया हूँ और यह इतने महान हैं कि एकान्त में बैठे हुए अपनी पत्नी से मेरे-जैसे शत्रु की प्रशंसा कर रहे हैं।

बस उसी समय उन्होंने अपने हथियार फेंक दिए और महर्षि वशिष्ठ के चरणों में जा गिरे। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे और वे बार-बार अपनी बात कहकर उनसे क्षमा माँग रहे थे। वशिष्ठजी ने बड़े प्रेम के साथ उन्हें उठाया और छाती से लगा लिया। बोले, "ब्रह्मर्षि! आपने आज क्रोध का त्याग किया है, आप ब्रह्मर्षि हो गए हैं।"

ऐसे थे महर्षि वशिष्ठ। जिस समय क्रोधी परशुराम ने क्षत्रियों को मारने का बीड़ा उठाया था, उस समय भी इन्होंने ही सूर्यवंश की रक्षा की थी। इनके सबसे बड़े पुत्र शक्ति थे। शक्ति के पुत्र थे पराशर। ये दोनों भी महर्षि हुए हैं। पराशर के पुत्र का नाम तो संसार भर में विख्यात है। जानते हो वे कौन थे? वे थे भगवान वेदव्यास। उनकी कहानी तुम अगले पृष्ठों में पढ़ोगे। आकाश में सात तारे तो तुम सबने देखे ही होंगे। उन्हें सप्तर्षि

मण्डल कहते हैं। उन तारों में एक का नाम वशिष्ठ है। इसके पास एक छोटी तारिका भी है, उसका नाम है अरुन्धती। अरुन्धती इसीलिए मशहूर नहीं हैं कि वे महर्षि वशिष्ठ की पत्नी थीं, बल्कि जो नारियाँ अपने पति को प्रेम करती हैं, उनमें वे सबसे महान थीं। इसीलिए आकाश में अपने पति के पास केवल एक उन्हीं को स्थान मिला है।



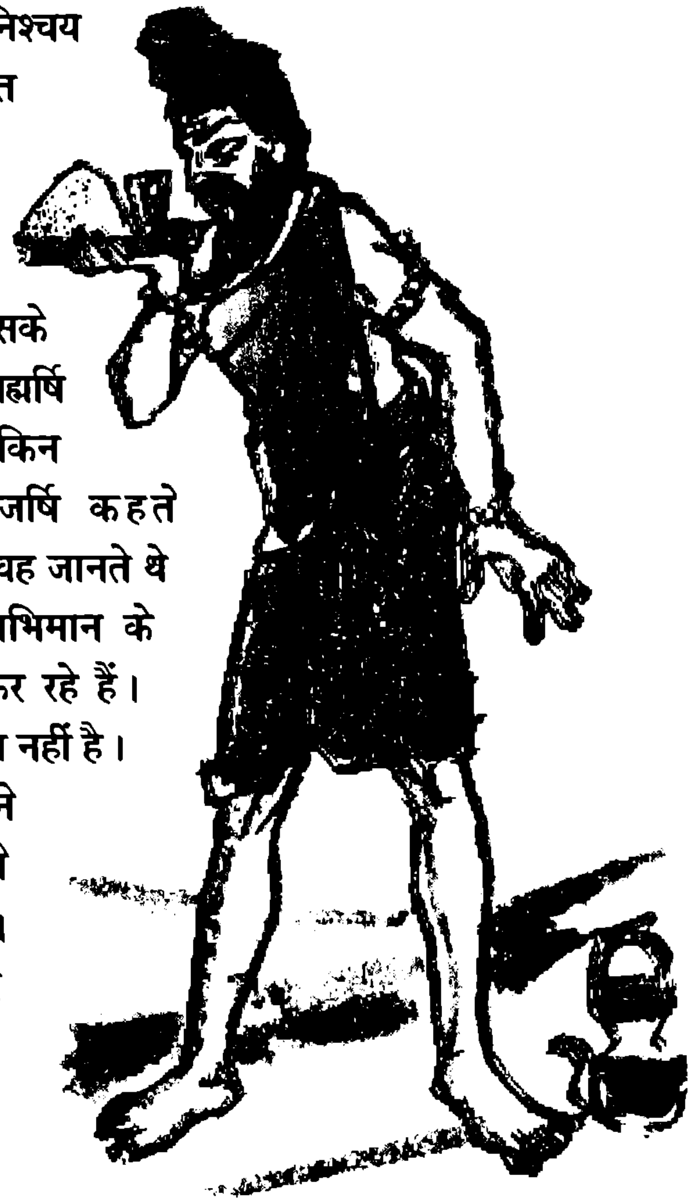
महर्षि विश्वामित्र

बच्चो, महर्षि वशिष्ठ की कहानी में तुमने महर्षि विश्वामित्र के बारे में बहुत कुछ पढ़ा होगा। वे एक क्षत्रिय राजा थे। कान्यकुब्ज देश में उनका राज्य था और उनके पिता का नाम महाराजा गाधि था। जिस समय वे राज कर रहे थे उस समय एक बार सेना के साथ घूमते-फिरते वे महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। वशिष्ठ जी के पास कामधेनु की पुत्री नन्दिनी गाय थी। माँगने पर वह सब कुछ दे सकती थी। उसकी कृपा से वशिष्ठ जी ने पूरी सेना के साथ राजा को नाना प्रकार के भोजन खिलाए।

यह देखकर विश्वामित्र के मन में लालच आ गया। उन्होंने वशिष्ठ जी से कहा, "यह गाय मुझे दे दो।"

वशिष्ठ जी ने इनकार कर दिया। तब विश्वामित्र की आज्ञा से उनके सैनिक गाय को बलपूर्वक ले चले। कहते हैं तब नन्दिनी क्रोध से भर उठी। उसने हज़ारों सैनिक पैदा किए और उन सैनिकों ने विश्वामित्र की अपार सेना को मार भगाया। यह युद्ध बहुत दिन तक चलता रहा परन्तु हर बार विश्वामित्र हार जाते। उन्होंने शंकर की तपस्या करके दिव्य हथियार प्राप्त किए। लेकिन वशिष्ठ जी के पास तो ब्रह्म-बल था। विश्वामित्र उन्हें न हरा सके। वह समझ गए, 'क्षत्रिय से ब्राह्मण का बल उत्तम

होता है।' उन्होंने तप करके ब्राह्मण बनने का निश्चय किया। उन्होंने बहुत वर्षों तक तपस्या की लेकिन वह ब्रह्मर्षि नहीं बन सके वशिष्ठ ही उनको ब्रह्मर्षि बना सकते थे, लेकिन वह सदा उन्हें राजर्षि कहते थे, ब्रह्मर्षि नहीं। वह जानते थे कि विश्वामित्र अभिमान के वश होकर तप कर रहे हैं। उनका त्याग सच्चा नहीं है। इसलिए उन्होंने विश्वामित्र को ब्राह्मण नहीं माना।



यह देखकर विश्वामित्र क्रोध से भर उठे। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ के पुत्रों को मार डाला। लेकिन वशिष्ठ फिर भी अपनी बात पर जमे रहे। अन्त में विश्वामित्र ने निश्चय किया कि वह वशिष्ठ को मार डालेंगे। यही सोचकर वह अँधेरा होने पर उनकी कुटिया की ओर चले। द्वार के निकट पहुँचकर उन्होंने सुना कि महर्षि

वशिष्ठ उनका नाम लेकर अपनी पत्नी से उनकी तपस्या की प्रशंसा कर रहे हैं। विश्वामित्र चकित हो उठे। उन्होंने सोचा, एक मैं हूँ जो बराबर उन्हें सता रहा हूँ, एक वे हैं कि सब कुछ सहकर भी मेरे तप की प्रशंसा कर रहे हैं। उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने अपने हथियार फेंक दिए; और अन्दर जाकर वशिष्ठ जी के चरण पकड़ लिये। वशिष्ठ जी ने तुरन्त स्नेह से भरकर उन्हें उठा लिया और कहा, ''ब्रह्मर्षि, आप कैसे हैं ?''

विश्वामित्र बोले, ''आपकी कृपा है। लेकिन आपने आज से पहले मुझे ब्रह्मर्षि क्यों नहीं कहा ?''

वशिष्ठ जी ने उत्तर दिया, ''क्योंकि तब आप अपनी शक्ति के मद से ब्राह्मण पद की माँग करते थे। परन्तु इस समय आपको पश्चात्ताप हो रहा है। यही ब्राह्मण की सच्ची पहचान है।''

उस दिन से विश्वामित्र ब्राह्मण का पद पाकर ब्रह्मर्षि हो गए। इन्होंने वेदमन्त्रों की रचना की है। गायत्री मन्त्र जो मन्त्रों में सबसे पवित्र माना जाता है, इन्हीं का रचा हुआ है। जैसा कि और ऋषियों के बारे में प्रसिद्ध है, विश्वामित्र किसी एक व्यक्ति का नाम नहीं था बल्कि यह भी उपाधि ही थी। प्राचीन इतिहास में कई विश्वामित्र प्रसिद्ध हुए हैं। एक विश्वामित्र वह थे जो रामचन्द्रजी को राजा दशरथ से माँगकर राक्षसों का नाश करने के लिए ले गए थे। राक्षस लोग ऋषियों को यज्ञ नहीं करने देते थे। राम ने उनको मारा था और विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को युद्ध-विद्या सिखाई थी फिर राजा जनक के पास ले गए थे। वहाँ राम का सीता से विवाह हुआ था।

एक विश्वामित्र वह थे, जिनकी पुत्री शकुन्तला थी। शकुन्तला का विवाह राजा दुष्यन्त से हुआ था। उनके पुत्र का नाम भरत था। इन्हीं भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा,

ऐसा सुना जाता है।

एक और विश्वामित्र थे जिन्होंने राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा ली थी। वे बहुत क्रोधी थे। शायद यही विश्वामित्र थे जिन्होंने राजा त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेजने की कोशिश की थी। कथा आती है कि राजा त्रिशंकु जो महर्षि वशिष्ठ के शिष्य थे, सदेह स्वर्ग जाना चाहते थे। राजा त्रिशंकु का असली नाम राजा सत्यव्रत था। लेकिन मनुष्य सदेह स्वर्ग नहीं जा सकता था। वशिष्ठ जी ने इनकार कर दिया। तब वह उनके शत्रु विश्वामित्र के पास पहुँचे। विश्वामित्र ने अपने तप के बल से सत्यव्रत को स्वर्ग भेज दिया। किन्तु देवताओं ने उन्हें वहाँ से गिरा दिया। गिरते समय सत्यव्रत ने विश्वामित्र को पुकारा। विश्वामित्र क्रोध से भर उठे और उन्होंने अपने तप के बल से सत्यव्रत को गिरने से रोक दिया। कहते हैं वह अधर में लटक गया। इसीलिए उसका नाम त्रिशंकु पड़ा। विश्वामित्र यहीं नहीं रुके, उन्होंने नई सृष्टि बनानी आरम्भ की। उस समय विधाता उनके पास आए और उन्हें समझा-बुझाकर ऐसा करने से रोका। विश्वामित्र फिर तप करने के लिए चले गए। क्योंकि वह समझ गए थे कि क्रोध को जीते बिना वे ब्रह्मर्षि नहीं बन सकते। उनके सम्बन्ध में और भी बहुत-सी कथाएं सुनी जाती हैं। एक बार धर्म आदि देवता उनकी परीक्षा लेने आए। उन्होंने भोजन माँगा और फिर स्नान करने के लिए चले गए। विश्वामित्र सौ वर्ष तक उनकी राह देखते भोजन लिए खड़े रहे। तब धर्म प्रसन्न हुए और उन्हें ब्रह्मर्षि का पद दिया।

ये सब कहानियाँ सच हैं या झूठ कोई नहीं जानता। इनका अर्थ एक ही है क्रोध को जीते बिना मनुष्य ऊँचा नहीं उठ सकता। और क्रोध जीतने के लिए घोर तप करना पड़ता है। एक क्षत्रिय

राजा ने वही घोर तप करके ब्रह्मर्षि का पद पाया था। मनुष्य चाहे तो क्या नहीं कर सकता। लेकिन उसके लिए उसे घोर प्रयत्न करना होगा। सच्चा प्रयत्न ही वह तप है। विश्वामित्र ऐसे ही मनुष्य का उदाहरण है। इसीलिए वे सप्तर्षियों में स्थान पा सके। उनके सौ पुत्र थे। उनका आश्रम कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर था। कोसी के तट पर उत्तर बिहार में भी उनका आश्रम रहा है। जैसा कि हमने कहा, विश्वामित्र एक उपाधि थी। इस उपाधि को पाने वाले अनेक व्यक्ति हुए हैं और उनके आश्रम हिमालय से लेकर विन्ध्याचल के पार तक फैले हुए थे। ऋषि लोग किसी एक स्थान पर नहीं रहते थे बल्कि सभ्यता और संस्कृति का प्रचार करते हुए घूमते रहते थे।



महर्षि दधीचि

अब हम तुम्हें एक ऐसे ऋषि की कहानी सुनाएंगे, जो जितने बड़े ज्ञानी थे, उतने ही उदार भी थे। उस समय जो व्यक्ति मधु विद्या को जानता था, वही सबसे बड़ा माना जाता था। महर्षि दधीचि इस विद्या के जानने वाले थे। इनका असली नाम दध्यङ आर्थवण था। एक बार इनके आश्रम में देवराज इन्द्र यह विद्या सीखने के लिए आए। उस आश्रम में दस हज़ार विद्यार्थी पढ़ते थे। सबको वे जानते थे। इस नए व्यक्ति को देखकर उन्होंने पूछा, ''तुम्हारा नाम क्या है और तुम क्या चाहते हो ?''

इन्द्र ने अपना परिचय दिया और कहा, ''मैं आपसे मधु विद्या सीखने के लिए आया हूँ।''

महर्षि सोच में पड़ गए। यह विद्या अधिकारी व्यक्ति को ही दी जा सकती थी। इन्द्र अधिकारी नहीं थे। ऋषि ने उनको विद्या का दान तो दिया पर यह भी स्पष्ट कह दिया, ''तुम भोगी हो। तुम्हें यह विद्या फलेगी नहीं।''

यह सुनकर इन्द्र क्रोध से भर उठा और कहा, ''यदि आप इस विद्या का उपदेश किसी और व्यक्ति को करेंगे, तो आपका सिर कट जाएगा।''

यह श्राप सुनकर महर्षि तनिक भी नहीं घबराए। बहुत दिन बाद देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार महर्षि के आश्रम में आए

और बोले, "आप हमें मधु विद्या का उपदेश दें।"

ऋषि ने उत्तर दिया, "हाँ, आप विद्या के अधिकारी हैं, मैं आपको वह विद्या सिखाऊँगा।"

लेकिन उन्हें इन्द्र के शाप का डर भी था। उन्होंने अश्विनीकुमार से उस शाप की चर्चा की। अश्विनीकुमार तो सबसे बड़े वैद्य थे। मरे व्यक्ति को जिला सकते थे। उन्होंने कहा, "हम आपका असली सिर काटकर अलग रख देते हैं, उसके स्थान पर घोड़े का सिर लगा देते हैं। हमको विद्या दान करने के बाद जब आपका यह सिर कट जाएगा, तो फिर हम आपका असली सिर लगा देंगे।"

महर्षि सहमत हो गए। अश्विनीकुमार ने ऐसा ही किया। जब वे मधु विद्या सीख चुके, तब इन्द्र के श्राप के अनुसार ऋषि का घोड़े का सिर कटकर गिर गया। अश्विनीकुमार ने तब उनका असली सिर लगा दिया और प्रसन्न होकर अपने घर चले गए। महर्षि भी बहुत प्रसन्न थे। इस बार उन्होंने यह विद्या अधिकारी व्यक्ति को ही सिखायी थी।

इन्द्र को जब यह समाचार मिला तो वह बहुत लज्जित हुआ। वह क्षमा माँगने के लिए महर्षि के आश्रम में आया। महर्षि तो बड़े उदार थे। उन्होंने इन्द्र को क्षमा कर दिया और उसे नाना प्रकार के उपदेश दिए। इन्द्र के हृदय में जो मैल था, वह इन उपदेशों से दूर हो गया। वह महर्षि का आदर करने लगा। बहुत दिनों के बाद दानवों ने इन्द्र के राज्य पर हमला किया। दानवों का नेता वृत्रासुर बहुत ही बलवान और भयंकर था। उसने सब देवताओं को हरा दिया। उनका राज्य छीन लिया। देवता इधर-उधर भागने लगे। तब दुःखी होकर इन्द्र महर्षि के आश्रम में आया। महर्षि सब कुछ जानते थे। उन्होंने कहा,



"मेरा वह घोड़े का सिर कुरुक्षेत्र के पास एक तालाब में है, उसे तुम ले आओ, वह बहुत कठोर है। उससे तुम वज्र तैयार करो और फिर वृत्रासुर से लड़ो। तुम्हारी जय होगी।"

महर्षि को प्रणाम करके इन्द्र कुरुक्षेत्र पहुँचे, घोड़े के सिर को तालाब से निकाला, उससे वज्र बनाया, और भी बहुत से हथियार बनाए। उनको लेकर वे फिर दानवों से लड़ने चले। बहुत घमासान युद्ध हुआ। उस युद्ध में इन्द्र ने वज्र से वृत्रासुर को मारा और अपना राज्य वापस पाया।

तो देखा, महर्षि कितने उदार थे जिसने उन्हें शाप दिया, उन्हें सताया, उसी की उन्होंने रक्षा की, उसके प्राण बचाए और

उसका राज्य वापस दिलवाया।

यही कहानी एक और रूप में सुनी जाती है। इन्द्र जब महर्षि दधीचि के पास सहायता माँगने के लिए आया, तो महर्षि ने उससे कहा कि तुम मेरी हड्डियों से हथियार तैयार करो। असल में ब्रह्मा ने इन्द्र को यह सलाह दी थी कि वह महर्षि से उनकी हड्डियाँ माँगे और उनसे हथियार बनाकर लड़े, तभी उसकी विजय होगी। यह सुनकर महर्षि ने कहा, ''यह शरीर तो एक न एक दिन नष्ट होगा ही। इससे उत्तम और क्या बात हो सकती है कि वह किसी के काम आए। मेरी हड्डियाँ आपके काम आती हैं, तो अवश्य ले जाइए।''

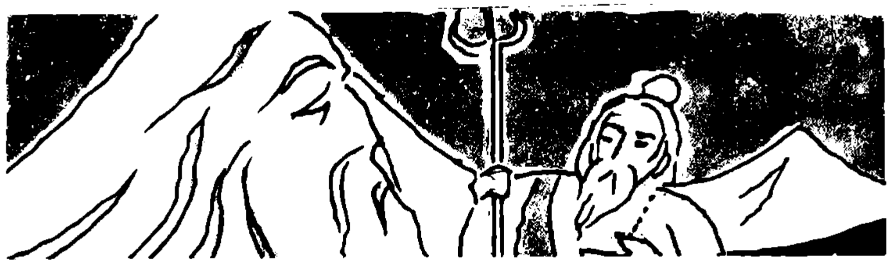
यह कहकर महर्षि समाधि में बैठ गए। कहते हैं जंगली गायों ने उनके शरीर को चाटना शुरू किया। जब हड्डियाँ शेष रह गयीं, तो इन्द्र ने उनसे वज्र बनाया। उसी वज्र से वृत्रासुर मारा गया।

एक और कहानी सुनाएँ। एक समय देवता लोग अपने सब हथियार महर्षि दधीचि के आश्रम में रख गए थे। बहुत दिन बीत गए, वे लेने नहीं आए। कहते हैं तब महर्षि ने उन अस्त्रों का तेज घोलकर पी लिया। इसीलिए जब वृत्रासुर को मारने के लिए इन्द्र अपने हथियार वापस लेने आया तो वहाँ कुछ भी नहीं था। तब महर्षि ने कहा, ''मैं तुम्हें अपनी हड्डियाँ देता हूँ। तुम इनसे अस्त्र-शस्त्र बनाकर दानवों से लड़ो, तुम्हारी जीत होगी।''

कहानियाँ अनेक हैं। बहुत-सी बातें ऐसी भी हैं, जिन पर विश्वास नहीं किया जा सकता, लेकिन उनका अर्थ बहुत स्पष्ट है। एक तो यह अर्थ है कि जो अपने साथ अपकार भी करता है, तो समय आने पर हमें उसकी चिन्ता न करके अपकार करने

वाले व्यक्ति के साथ उपकार ही करना चाहिए। दूसरा अर्थ और भी स्पष्ट है। पुरातन काल के तपोवनों में रहने वाले ये ऋषि केवल हवन ही नहीं करते थे, केवल पढ़ते-पढ़ाते ही नहीं थे, बल्कि युद्ध की विद्या में भी बड़े निपुण थे, नाना प्रकार के हथियार बनाना जानते थे। महर्षि दधीचि ने वज्र नाम का एक नया हथियार बनाया था और इन्द्र को दिया था। उसी से इन्द्र ने वृत्रासुर को मारकर अपना राज्य वापस लिया था।

इस प्रकार महर्षि दधीचि ज्ञानी भी थे और युद्ध की विद्या में निपुण भी थे। उनका विवाह महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा की बहन सुवर्चा से हुआ था। उनके दो पुत्र थे–सारस्वत और पिप्लाद। ये दोनों अपने पिता के समान ही परम तपस्वी और ज्ञानी थे।



महर्षि अगस्त्य

बच्चो, अब तक तुम यह तो समझ ही गए होगे कि तपोवनों में रहने वाले ऋषि-मुनि केवल साधु या तपस्वी ही नहीं होते थे, वे बड़े ज्ञानी होते थे। उन्होंने वेदों के मन्त्र रचे हैं, वे युद्ध-विद्या, नक्षत्र विद्या जैसी और भी अनेक विद्याएं जानते थे, वे राजकाज में भी भाग लेते थे। अब हम जिन महर्षि की कहानी आपको सुनाने जा रहे हैं, वे बहुत बड़े घुमक्कड़ थे। वे विद्वान थे, ज्ञानी थे। अपने ज्ञान और अपनी विद्या का प्रचार करने के लिए वे हिमालय से चले थे और दक्षिण में ठेठ कन्याकुमारी तक पहुँच गए थे। मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आईं, अज्ञात देश और अपरिचित जातियों के बीच में रहना पड़ा। पर वे जहाँ भी गए, अपने धर्म और अपनी संस्कृति का प्रचार करते रहे।

इस बात को हमारे प्राचीनकाल के इतिहासकारों ने रोचक कथाओं के रूप में लिखा है। एक कथा आती है कि विन्ध्याचल पर्वत एक बार ऊपर उठने लगा। उसके उठने से सूरज और चाँद का मार्ग भी रुक गया। देवताओं ने उससे बार-बार प्रार्थना की, किन्तु उसने उनकी नहीं सुनी। तब वे महर्षि अगस्त्य के पास गए और उन्हें अपने आने का प्रयोजन कह सुनाया। देवताओं की बात सुनकर महर्षि विन्ध्याचल के पास पहुँचे। बोले, ''हे पर्वत श्रेष्ठ! मैं किसी काम से दक्षिण की ओर जा रहा

हूँ, तुम मुझे उधर जाने का रास्ता दो और जब तक मैं वहाँ से वापस न लौटूँ, तब तक नीचे ही झुके रहो।"



विन्ध्याचल ने सिर झुकाकर उन्हें जाने का रास्ता दे दिया। वे दक्षिण की ओर चले गए, लेकिन फिर नहीं लौटे।

यह कथा इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि महर्षि अगस्त्य पहले व्यक्ति थे, जो विन्ध्याचल को पार करके दक्षिण में आर्य संस्कृति का प्रचार करने गए। उनके सम्बन्ध में तुम लोगों ने एक और कथा सुनी होगी कि वे समुद्र को पी गए थे। कालकेय नाम का एक राक्षस समुद्र में रहता था। रात के समय वह बाहर निकलकर देवताओं और तपोवनों में रहने वाले ऋषि-मुनियों को तंग करता था। समुद्र में रहने के कारण उसे कोई मार भी नहीं सकता था। तब अन्त में देवता लोग अगस्त्य ऋषि के पास पहुँचे और कहा, "आप समुद्र को पी जाइए, तब हम कालकेय को मार डालेंगे।"

महर्षि ने ऐसा ही किया। समुद्र सूख गया और देवताओं ने कालकेय को मार डाला। इस कहानी का अर्थ भी बहुत साफ है। अगस्त्य मुनि की मूर्तियाँ हिन्द महासागर में बसे हुए द्वीप

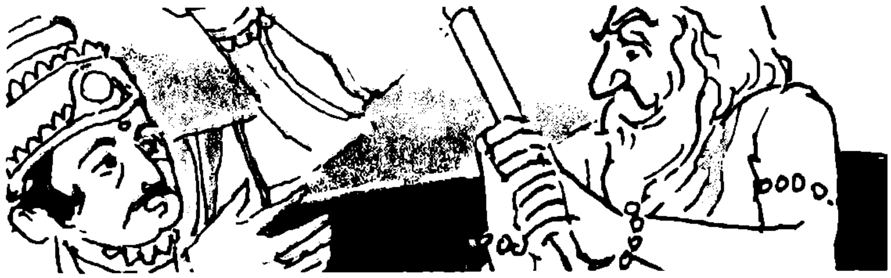
समूह इण्डोनेशिया में मिलती हैं। उन्होंने पहली बार समुद्र पार करके जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और स्याम आदि देशों में आर्य संस्कृति का प्रचार किया। इसी प्रचार का परिणाम था कि आर्य लोग धीरे-धीरे सारे दक्षिण में फैल गए और उसके बाद दक्षिण-पूर्व के देशों में जा-जाकर अपने राज्य स्थापित किए। तनिक बड़े होकर जब तुम इतिहास पढ़ोगे, तो ये सब बातें तुम्हें मालूम होंगी और तुम महर्षि अगस्त्य का महत्त्व समझ सकोगे।

दक्षिण के रहने वाले विशेषकर तमिल प्रदेश के लोग तो महर्षि अगस्त्य को अपना ही समझते हैं। वे यहाँ तक मानते हैं कि तमिल भाषा का सबसे पहला व्याकरण उन्होंने ही बनाया था। वे पहले ऋषि थे, जिन्होंने उत्तर-दक्षिण का भेद मिटाकर सारे भारत को एक करने का प्रयत्न किया। सारे दक्षिण भारत में उनके आश्रम फैले पड़े थे। कर्नाटक में बातापी, कुर्ग में ब्रह्मगिरि, आन्ध्र में द्राक्षाराम, तंजाऊर में अगस्त्यम्, पल्ली तथा तिरुनेलवेलि में पोदियमलै तथा अगस्त्यावरम् बहुत प्रसिद्ध हैं। रामचन्द्रजी सीताजी को ढूंढ़ते हुए जब किष्किन्धा पहुँचे, तब तक महर्षि अगस्त्य पोदियमलै में अपना आश्रम स्थापित कर चुके थे। इससे पहले वे दण्डकारण्य में रहते थे। जैसा कि नाम से मालूम होता है, यह एक बहुत बड़ा और भयानक जंगल था। आदमियों को खा जाने वाले राक्षस इसमें रहते थे। महर्षि जब यहाँ पहुँचे, तो राक्षसों ने इनका बड़ा विरोध किया। तब इन्होंने उनके साथ युद्ध भी किए थे। जिस समय रामचन्द्रजी दण्डकारण्य पहुँचे, तब महर्षि गोदावरी नदी के तीर पर पंचवटी में रहते थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे निरन्तर आगे बढ़ते रहते थे। उन्होंने दैत्यों के राजा बातापी और ताड़का के पति सुण्ड को मारा भी था।

इस प्रकार महर्षि अगस्त्य ज्ञानी थे, पर्यटक थे, योद्धा थे और थे धर्म तथा संस्कृति के प्रचारक। लेकिन केवल इतना ही नहीं, वे कुछ और भी थे। उनका विवाह विदर्भ देश के राजा की कन्या लोपामुद्रा से हुआ था। लोपामुद्रा स्वयं एक बहुत बड़ी विदुषी थी। वह राजकुमारी थी। विवाह करते समय उसने एक शर्त रखी थी कि जब तक उसे उसके कुल की प्रतिष्ठा के योग्य वस्त्र और आभूषण नहीं दिए जाएँगे, तब तक वह ऋषि के साथ नहीं रहेगी। महर्षि ने वातापी के राजा से धन लेकर अपनी पत्नी को दिया था। उसके सम्बन्ध में एक कथा आती है कि एक समय उस देश में बहुत अकाल पड़ा। उस समय महर्षि कुर्ग में ब्रह्मगिरि के पास रहते थे। अकाल के कारण लोग भूखे मरने लगे। लोपामुद्रा से यह नहीं देखा गया। वह तुरन्त एक नदी बन गयी और वही नदी कावेरी कहलायी। यह कथा अनेक प्रकार से कही जाती है। लेकिन इसका स्पष्ट और सीधा अर्थ यही है कि धर्म का प्रचार करते हुए घूमते-घूमते महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा वहाँ जा पहुँचे थे, जहाँ से कावेरी निकलती थी। इस तरह उन्होंने कावेरी को ढूँढ निकाला था और हो सकता है कि इस यात्रा में ही लोपामुद्रा की मृत्यु हुई हो। बाद में कवियों ने उनके साहस की कहानी को इस प्रकार लिखा कि लोपामुद्रा स्वयं नदी बन गयी।

जैसा कि उस समय होता था अगस्त्य भी एक ही ऋषि का नाम नहीं था। उनकी गद्दी पर जो भी व्यक्ति बैठता था, वही अगस्त्य कहलाता था। इसलिए ऊपर की जितनी कहानियाँ हमने बतायी हैं, उनका सम्बन्ध नहीं है। एक ही अगस्त्य से तमिल भाषा का व्याकरण रचने वाले, कावेरी को खोजने वाले, सबसे पहले दक्षिण में प्रवेश करने वाले, समुद्र पार करके दूसरे

देशों में आर्यों की बस्ती बसाने वाले, ये सब अलग-अलग अगस्त्य थे। एक ही गद्दी पर बैठने वाले सभी ऋषि अगस्त्य कहलाते थे। उन्होंने आर्य संस्कृति का प्रचार न केवल सारे भारतवर्ष में किया बल्कि समुद्र को पार करके दूसरे देशों में भी किया।



महर्षि जमदग्नि

महर्षि जमदग्नि विद्वान तो थे ही, तपस्वी भी थे। वेदों के काफी सूक्त इनके रचे हुए हैं, लेकिन इनकी प्रसिद्धि का कारण कुछ और ही है। ये पहले ऋषि थे, जिन्होंने श्राद्ध की विधि का आरम्भ किया था। श्राद्ध तो तुमने अपने घर में होते हुए देखे होंगे। जिस दिन किसी घर के बड़े की मृत्यु होती है, प्रति वर्ष फिर उसी दिन उसकी याद में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। वर्ष में कुछ दिन ऐसे रखे गए हैं कि उन दिनों में अपने बड़ों की याद में प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है और दान दिया जाता है। यही श्राद्ध है और इसका आरम्भ महर्षि जमदग्नि ने किया था।

परशुराम का नाम तो तुम सबने ही सुना होगा। ये बहुत क्रोधी थे और महर्षि जमदग्नि के पुत्र थे। महर्षि भी परशुराम की तरह ही बहुत क्रोधी थे। इनकी पत्नी का नाम रेणुका था। एक बार महर्षि बाण चलाने का अभ्यास कर रहे थे। रेणुका बार-बार बाण उठाकर ला रही थी। दिन का समय था, खूब धूप निकली हुई थी। बेचारी थक गई और पेड़ के नीचे बैठ गयी। महर्षि ने उससे देर से आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि धूप के कारण मैं थक गयी थी। बस यह सुनकर महर्षि क्रोध से भर उठे और सूर्य को ही मारने के लिए तैयार हो गए;

क्योंकि धूप तो सूर्य के कारण ही होती है। इसी तरह रेणुका एक बार सरोवर से पानी लेने गई। वहाँ गन्धर्व लोग स्नान कर रहे थे। खेल-कूद भी रहे थे। रेणुका उनके खेल को देखती रही और आश्रम में लौटने में देर हो गयी। बस महर्षि तो आग हो उठे। उन्होंने अपने चारों पुत्रों को बुलाया और कहा, "अपनी इस माँ को मार डालो।"

तीनों बड़े पुत्रों ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। परशुराम सबसे छोटे थे। दुःख तो उन्हें भी बहुत हुआ। पर वह पिता की आज्ञा नहीं टाल सके। उन्होंने माँ को मार डाला। पिता बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "वर माँगो।"

परशुराम ने हाथ जोड़कर कहा, "यदि आप प्रसन्न हैं तो माँ को जीवित कर दीजिए।"

ऐसा ही हुआ। लेकिन बच्चो, ये कहानियाँ सच्ची नहीं हो सकतीं। जैसा कि हम पिछली कहानियों में बता आए हैं, इन कहानियों का भी एक गूढ़ अर्थ है। जमदग्नि बहुत क्रोधी थे। उनके क्रोध की अधिकता को बताने के लिए ही ये कहानियाँ रची गई थीं। जो कुछ भी हो, जो महर्षि जमदग्नि इतने क्रोधी थे, वे ही एक दिन परम शान्त हो गए।

उनके आश्रम में भी कामधेनु थी। एक बार राजा कार्तवीर्य उनके आश्रम में आया। कामधेनु से नाना प्रकार के पकवान और नाना प्रकार की मिठाइयाँ माँगकर महर्षि ने राजा की आवभगत की। यह देखकर राजा ने महर्षि से गाय माँगी। लेकिन महर्षि गाय कैसे दे सकते थे ? वह तो इन्द्र की थी। उन्होंने मना कर दिया। राजा तो आखिर राजा था। सेना लेकर आश्रम पर चढ़ आया। उसने महर्षि को मार डाला और गाय ले गया। तब परशुराम की माता ने रो-रोकर इक्कीस बार अपने पुत्र को

पुकारा। यह भी कहते हैं कि कार्तवीर्य ने इक्कीस बाणों से महर्षि को मारा था। माँ की पुकार सुनकर परशुराम तपोवन से लौटे। पिता की यह दुर्दशा देखकर उन्होंने प्रण किया कि मैं कार्तवीर्य को तो मारूँगा ही, लेकिन संसार के क्षत्रियों को मारकर धरती से उनका नाम मिटा दूँगा। कहते हैं सबसे पहले तो उन्होंने कार्तवीर्य को मारा और गाय वापस लाए। उसके बाद सारी पृथ्वी पर इक्कीस बार घूम-घूमकर क्षत्रियों का नाश किया। बहुत थोड़े से राजा इधर-उधर छिपकर बच सके। यही परशुराम जी सीता-स्वयंवर में पहुँचे थे और शिव का धनुष तोड़ने के कारण, राम को मारने के लिए तैयार हो गए थे। राम उनसे बलशाली थे। उन्होंने परशुराम को पराजित कर दिया। उसके बाद परशुराम तप करने के लिए दक्षिण की ओर चले गए।



इस कथा का अर्थ भी यही है कि महर्षि जमदग्नि के समय में ब्राह्मणों और क्षत्रियों में वैर बढ़ गया था। दोनों में अनेक बार लड़ाई-झगड़े हुए थे। लेकिन अन्त में ऋषि-मुनि क्रोध को छोड़कर अपने-अपने तपोवनों में लौट गए और धर्म तथा संस्कृति

का प्रचार करने लगे। राज चलाने का भार राजाओं पर ही रहा। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ऋषि-मुनि केवल धर्म-चर्चा करना ही नहीं जानते थे, बल्कि अवसर आने पर वे युद्धभूमि में लड़ भी सकते थे। आखिर युद्ध-विद्या की शिक्षा भी तो वे ही देते थे। असल में समाज में किसी एक जाति या किसी एक दल का प्रभुत्व नहीं बढ़ना चाहिए। सब जातियों, सब धर्मों, सब दलों को मिलकर अपना-अपना काम करना चाहिए। सबसे पहले मनुष्य है; धर्म, जाति दल सब बाद में हैं।



महर्षि मुद्गल

महर्षि मुद्गल वेदविद्या को जानने वाले एक बहुत ही ऊँचे दर्जे के आचार्य थे। वे बड़े त्यागी थे। किसी से कुछ नहीं माँगते थे। उनका आश्रम कुरुक्षेत्र में था और वे 'शिलौंछवृत्ति' से अपने जीवन का निर्वाह करते। इसका अर्थ यह है कि जब किसान लोग खेत काटकर अन्न घर ले जाते थे तब जो दाने खेत में बचे रह जाते थे उन्हीं को चुनकर वे अपना पेट पालते थे। खेत में गिरे हुए उन दानों को 'शिल' कहते हैं और जो उन दानों पर जीता है उसे 'शिलाद' कहते हैं। इसी तरह बाज़ार में भी तौलते या लेते-देते वक्त कुछ दाने बिखर जाते हैं। उन बिखरे हुए दानों को उंछ कहते हैं। जो व्यक्ति खेत में और बाज़ार में ऐसे बिखरे हुए दानों को चुनकर पेट पालता है उसे 'शिलौंछवृत्ति' कहा जाता है।

महर्षि मुद्गल इसी वृत्ति का सहारा लेकर अपना और अपने परिवार का पेट पालते थे। उनका यह भी नियम था कि कभी चौंतीस सेर से अधिक अन्न इकट्ठा नहीं करेंगे। वे महीने में अमावस्या और पूर्णिमा—केवल इन्हीं दो दिन भोजन करते थे। वे मानते थे कि भोजन का प्रबन्ध करने में बहुत-सा समय बीत जाता है। उसे कम करके भगवान की आराधना करने में अधिक समय देना चाहिए।

एक बार ऐसा हुआ कि महर्षि दुर्वासा पूर्णिमा के दिन उनके घर पधारे। महर्षि दुर्वासा तो मानो क्रोध के अवतार थे। लेकिन थे तो ऋषि ही। उन्हें अपने घर देखकर महर्षि मुद्गल बहुत प्रसन्न हुए। बड़े प्रेम से उन्हें भोजन खिलाया। उस दिन जितना भोजन बना था सभी उन्होंने खा लिया और वे चले गए। महर्षि मुद्गल और उनका परिवार केवल जल पीकर ही रह गया। अमावस्या के दिन दुर्वासा जी फिर उनके घर आए। महर्षि मुद्गल ने पहले की तरह उनको फिर भोजन के लिए कहा। दुर्वासा फिर सारे का सारा भोजन खाकर चले गए। इससे अधिक पवित्र भोजन उन्हें और कहाँ मिल सकता था इसलिए वह बार-बार आने लगे। हर बार वह सारा भोजन खाकर चले जाते और महर्षि मुद्गल सपरिवार जल पीकर रह जाते। इस तरह करते-करते तीन महीने बीत गए। एक क्षण के लिए भी उनके मन में क्रोध पैदा नहीं हुआ। बड़े प्यार से वह दुर्वासा का सत्कार करते रहे। दुर्वासा तो सब कुछ जान-बूझकर कर रहे थे। वह बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने महर्षि मुद्गल से कहा, ''मैं आप पर बहुत प्रसन्न हूँ। आपने सचमुच क्रोध को जीत लिया है। मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ कि आप सदेह स्वर्ग जाएँ।''

कहते हैं इसी वरदान के अनुसार देवराज इन्द्र ने उन्हें स्वर्ग ले जाने के लिए विमान भेजा। देवदूतों ने प्रार्थना की, ''आप अपने परिवार के साथ विमान में बैठकर स्वर्ग पधारें।''

महर्षि बोले, ''मुझे स्वर्ग जाने में कोई आपत्ति नहीं है लेकिन पहले आप मुझे स्वर्ग के गुण और दोष बताइए।''

देवदूतों ने स्वर्ग के गुणों का बड़ा लम्बा-चौड़ा वर्णन करते हुए कहा, ''वहाँ सुख ही सुख है। मनुष्य सदा युवक रहता है, कभी बूढ़ा नहीं होता, कभी मरता नहीं। कोई अभाव उसे



नहीं सताता।"

महर्षि बोले, "क्या वहाँ किसी तरह का कोई भय नहीं?"

देवदूत ने उत्तर दिया, "नहीं, जब तक मनुष्य के पुण्य हैं तब तक उसे कोई भय नहीं है। पुण्य जब समाप्त हो जाते हैं तब उसे वहाँ से गिरना पड़ता है। जो जितना पुण्यात्मा है उसे उतना ही सुख मिलता है।"

महर्षि बोले, "तब तो कम सुख वाले और अधिक सुख वाले लोगों में ईर्ष्या-द्वेष होता होगा। और जहाँ ईर्ष्या-द्वेष है वहाँ सुख नहीं हो सकता।"

देवदूत इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके। महर्षि ने मुसकराकर कहा, "जहाँ इतना सुख है वहाँ कम सुख वाले लोग आक्रमण भी तो करते होंगे ?"

देवदूत बोले, "जी हाँ। दैत्य लोग कभी-कभी आक्रमण करते हैं। देवताओं को भगा देते हैं।"

महर्षि ने उत्तर दिया, "तब मैं स्वर्ग किसलिए जाऊँ ? मेरे लिए यह धरती ही अच्छी है। यहाँ के सुख-दुःख को मैं पहचानता हूँ। उनके बीच में रहकर भगवान की पूजा कर सकता हूँ। मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा। आप देवराज इन्द्र से कह दीजिए।"

यह सुनकर देवदूत चकित रह गए। उन्होंने कहा, "अच्छा, आप स्वर्ग न चलिए। और बहुत से लोक हैं, वहाँ चलिए। ब्रह्मलोक चलिए। अपने पुण्य का फल भोगिए।"

महर्षि बोले, "स्वर्ग में जो दोष हैं वे सब उन लोकों में भी होंगे ?"

देवदूत ने उत्तर दिया, "जी हाँ, दोषरहित तो कहीं कुछ भी नहीं है।"

महर्षि मुसकराए, "तब मैं कहीं नहीं जाऊँगा।"

देवदूत बहुत निराश हुए और खाली विमान लेकर देवराज के पास लौट गए। भगवान महर्षि की इस भावना से बहुत ही प्रसन्न हुए। कहते हैं कि वे स्वयं आकर उन्हें अपने धाम ले गए। नहीं मालूम, स्वर्ग है या नहीं। भगवान किसी को लेने आते हैं या नहीं, यह भी हमें नहीं मालूम। आज की दुनिया में इन बातों पर विश्वास करना बड़ा कठिन है लेकिन इस कथा से यह स्पष्ट है कि सुख-दुःख, पाप-पुण्य, सब इसी धरती पर है। इससे भागकर हम कहीं सुख नहीं पा सकते।



महर्षि वेदव्यास

महर्षि वेदव्यास बहुत बड़े विद्वान और पंडित थे। उनके समय से पहले ऋषि-मुनि वेदों को याद करते थे। वेदव्यास जी ने पहली बार उनको लिखा और उनको चार भागों में बाँटा—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। उन्होंने पुराणों की भी रचना की। एक शास्त्र भी उनके नाम से चलता है। उसका नाम है वेदान्त शास्त्र।

जिस एक पुस्तक के कारण उनको हम सबसे अधिक जानते हैं वह है महाभारत। महाभारत में कौरव-पाण्डवों की कहानी है, वेद-शास्त्र का ज्ञान है, विज्ञान की चर्चा है, पुराणों की कहानियाँ भी हैं। उस समय के समाज, धर्म और देश का पूरा इतिहास है। यही नहीं, वेदव्यास और भी अनेक विद्याएं जानते थे। एक स्थान पर बैठकर दूर-दूर की बातें सुन लेना, दूर-दूर तक क्या हो रहा है यह देख लेना, यह भी वह जानते थे। कौरव और पाण्डवों में जब लड़ाई शुरू हुई तब संजय हस्तिनापुर में बैठे हुए ही कुरुक्षेत्र में हो रहे युद्ध की कहानी धृतराष्ट्र को सुनाया करते थे। यह विद्या वेदव्यास ने ही उनको सिखायी थी। नहीं मालूम यह बात सच है या झूठ, लेकिन आज विज्ञान ने इस बात को सच कर दिया है। हो सकता है तब भी विज्ञान इतना बढ़ा हुआ रहा हो। न रहा हो, लेकिन महाभारत के लिखने

वाले ने ऐसी कल्पना तो की ही थी।

व्यास जी का जन्म महर्षि वशिष्ठ के कुल में हुआ था। वशिष्ठ जी के पुत्र थे शक्ति, शक्ति के पुत्र हुए पराशर और पराशर के पुत्र थे महर्षि वेदव्यास। इनकी माता का नाम सत्यवती था। सत्यवती ने बाद में कुरुकुल के राजा शान्तनु से विवाह किया था। इसी कुल में कौरवों और पाण्डवों का जन्म हुआ था। इस तरह वेदव्यास जी कौरव और पाण्डवों के रिश्ते में दादा लगते थे। वैसे तो वे सब को समान रूप से प्यार करते थे लेकिन पाण्डवों पर उनकी बड़ी कृपा थी। वे जानते थे कि पाण्डव धर्मात्मा हैं। उनके कहने पर ही पाण्डव द्रौपदी-स्वयंवर में गए थे। उनके कहने पर ही युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ किया था। उनके कहने पर ही भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, चारों भाई चारों दिशाओं में राजाओं को जीतने गए थे। जिस समय पाण्डवों को वनवास हुआ तब व्यास जी ने ही उनकी सहायता की थी। जब गान्धारी अपने पुत्रों के मर जाने पर पाण्डवों को शाप देना चाहती थी तब भी उन्होंने ही उसे ऐसा करने से रोका था।

युद्ध में पाण्डवों की जीत हुई, लेकिन वह जीत हार जैसी ही थी। युधिष्ठिर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने राजगद्दी पर बैठने से इनकार कर दिया। तब भी व्यास जी ने आकर उन्हें नीति की कहानियाँ सुनाईं। धर्म से राज्य करने को कहा। कहा, ''आदमी को निराशावादी नहीं होना चाहिए। जो कुछ धर्म है, उसे पूरा करना चाहिए। तुम्हें धर्म से राज्य मिला है। धर्म से ही प्रजा का पालन करो।''

युधिष्ठिर ने उनकी बात मान ली और फिर अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ में उन्होंने सारा राज्य व्यास जी को दान कर दिया। व्यास जी तो तपस्वी थे। राज्य लेकर क्या करते ! उन्होंने



युधिष्ठिर का राज्य उन्हीं को दे दिया। उन्हें बहुत तरह से समझाया-बुझाया, ज्ञान-विज्ञान की बातें बताईं और फिर तप करने के लिए वन में चले गए। वहीं पर उन्होंने वेदों, शास्त्रों पुराणों और महाभारत की रचना की। पहले उनका आश्रम कुरुक्षेत्र के पास व्यास वन में था। उसके बाद वह बद्रीनाथ से भी आगे चले गए। आज भी भारत के अन्तिम गाँव मानागाँव के पास, सरस्वती नदी के तट पर व्यास जी का आश्रम बना हुआ है। एक छोटी-सी गुफा है। कहते हैं इसी गुफा में उन्होंने पुराणों की रचना की थी।

उन्होंने जो उपदेश दिया उसमें तीन बातें बहुत ही ध्यान देने लायक थीं। पहली बात तो यह कि उन्होंने कहा, इस दुनिया में, मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। दूसरी बात यह कि धर्म से बड़ा कुछ नहीं है। तीसरी बात यह कि हिंसा से मनुष्य का

भला नहीं हो सकता। महाभारत की कहानी से ये तीनों बातें सिद्ध हो जाती हैं। कितना बड़ा युद्ध था यह, कितने आदमी मारे गए ! पाण्डवों की जीत हुए, कौरव हार गए। लेकिन पाण्डव-दल में सात आदमी बचे, कौरव-दल में तीन। यह नाम की जीत है। नाश तो दोनों का बराबर ही हुआ। पाण्डवों को जो राज मिला वह बहुत दुर्बल था। धर्म एक तरह से नष्ट ही हो गया। अर्जुन का बल भी समाप्त हो गया। श्रीकृष्ण के वंश वाले आपस में ही लड़कर मर गए। आखिर दुःखी होकर पाण्डव भी हिमालय में चले गए। और वहीं गलकर मर गए। कहते हैं केवल युधिष्ठिर ही स्वर्ग जा सके। यह बात भी सच हो या झूठ किन्तु इससे इतना साफ है कि हिंसा से मनुष्य का कल्याण नहीं होता। यह बात कहने का साहस केवल महर्षि वेदव्यास में ही था। असल में उन्होंने मनुष्य के लिए जो धर्म ठीक है उसी की चर्चा की है। उस धर्म को आज हम वेदान्त के नाम से जानते हैं। वेदान्त का मतलब है कि जो कुछ हम जानते हैं वही सत्य नहीं है, दूसरे जो कुछ कहते हैं उस पर भी हमें विचार करना चाहिए। कोई छोटा-बड़ा नहीं है। सब मनुष्य समान हैं क्योंकि मनुष्य से बड़ा तो कुछ है ही नहीं।

ऐसा ज्ञान देने वाले व्यासजी सभी हिन्दुओं के पूज्य हैं। गुरु हैं। इसीलिए आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को 'गुरु-पूर्णिमा' कहा जाता है। उस दिन गुरुदेव की पूजा के साथ-साथ महर्षि वेदव्यास की पूजा भी होती है।

इनके एक ही पुत्र हुए। उनका नाम था शुकदेव। वह बचपन में ही विरागी हो गए थे। उन्होंने विवाह ही नहीं किया। वे पिता से भी अधिक विद्वान थे। उन्होंने पाण्डवों के पोते राजा परीक्षित को महाभारत की कथा सुनाई थी। जब तक इस संसार

में महाभारत की कथा जीवित है तब तक महर्षि वेदव्यास का नाम भी अमर रहेगा। वह विद्वान, साहित्यकार, इतिहासकार–सब कुछ थे। वह सही अर्थों में ऋषि थे। ऋषि वही है जो केवल पीछे की बात नहीं सोचता, केवल वर्तमान को ही नहीं देखता, भविष्य की कल्पना भी करता है।



महर्षि याज्ञवल्क्य

महर्षि वैशम्पायन के आश्रम में बहुत से विद्यार्थी पढ़ा करते थे। याज्ञवल्क्य उनके भानजे थे। वे भी वहीं पढ़ते थे। एक बार ऋषियों की एक सभा हुई। उसमें यह नियम था कि जो ऋषि उस सभा में नहीं जाएगा उसे ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। वैशम्यापन जी किसी कारणवश समय पर नहीं पहुँच सके। उन्हें वह पाप लग गया। तब उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, ''तुम सब लोग इस पाप का प्रायश्चित्त करो।''

याज्ञवल्क्य जी मामा के मुँह लगे थे। बोले, ''मामाजी, आप सबसे क्यों कहते हैं ? मैं अकेला ही प्रायश्चित्त कर दूँगा।''

वैशम्पायन जी यह सुनकर नाराज़ हो गए। बोले, ''तुमने ब्राह्मणों का अपमान किया है। तुम मेरे शिष्य होने के योग्य नहीं हो। मैंने जो कुछ तुम्हें पढ़ाया है वह सब भूल जाओगे। तुम यहाँ से चले जाओ।''

याज्ञवल्क्य सब कुछ भूल गए और वहाँ से चले गए। लेकिन वे वेद पढ़ना चाहते थे। कहते हैं उन्होंने सूर्य भगवान की तपस्या की। सूर्य प्रसन्न हुए और उन्होंने याज्ञवल्क्य जी को यजुर्वेद पढ़ाया। नहीं कह सकते कि यह सूर्य भगवान कौन थे। हो सकता है कि इस नाम के कोई ऋषि रहे हों। उनसे वेद पढ़ने के बाद याज्ञवल्क्य जी मिथिला के पास आश्रम बनाकर रहने



लगे। वे बहुत बड़े विद्वान हुए हैं, इतने बड़े विद्वान कि उस समय के सब ऋषि-मुनि उनसे हार गए थे। कहते हैं एक बार राजा जनक की सभा में सारे देश के बड़े-बड़े विद्वान जमा हुए थे। असल में राजा जनक स्वयं बहुत बड़े विद्वान थे। देश-देश

के विद्वानों को बुलाकर वह धर्म-चर्चा किया करते थे। उस दिन भी ऐसी ही चर्चा हो रही थी। राजा ने घोषणा की, ''जो भी विद्वान ब्रह्म को सबसे अधिक जानने का दावा करता हो वह सामने खड़ी हुई एक हज़ार गौओं को हाँक ले लाए। ये गायें बहुत दूध देने वाली हैं। हर गाय के सींगों पर दस-दस सोने की मुद्रायें बँधी हैं।''

यह घोषणा सुनकर सभा में कोलाहल मचने लगा। एकाएक किसी में साहस नहीं हुआ कि उठ सके। यह देखकर याज्ञवल्क्य जी उठे और उन्होंने अपने शिष्य से कहा, ''सामश्रवा, इन गौओं को हाँक ले चलो।''

सामश्रवा उठा ही था कि एक ब्राह्मण ने तेज़ होकर पूछा, ''याज्ञवल्क्य, क्या सचमुच ही तुम ब्रह्म को हम सबसे अधिक जानते हो ?''

याज्ञवल्क्य ने कहा, ''जानता हूँ, तभी तो गौओं को ले जा रहा हूँ !''

ब्राह्मण बोला, ''लेकिन तुम ऐसे नहीं ले जा सकते। तुम्हें हमारे प्रश्नों का उत्तर देना होगा।''

याज्ञवल्क्य ने कहा, ''पूछो ब्राह्मण, क्या पूछते हो ?''

तब एक से एक बढ़कर विद्वानों ने उनसे अनेक प्रश्न पूछे, उन्होंने सभी का उत्तर देकर ब्राह्मणों को चकित कर दिया। उस सभा में महापंडिता गार्गी भी थी। अन्त में वह उठी। ''ब्राह्मणो, मैं याज्ञवल्क्य से दो प्रश्न पूछूँगी। यदि उनका उत्तर मिल गया तो इनसे बढ़कर ब्रह्म को जानने वाला कोई नहीं है।''

ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर गार्गी ने प्रश्न पूछे। सहज भाव से याज्ञवल्क्य ने उनका उत्तर दे दिया। तब गार्गी बोली, ''ब्राह्मणो, इनसे बढ़कर ब्रह्म को जानने का दावा कोई नहीं

कर सकता। आओ, हम सब इनको प्रणाम करें।''

ऐसे थे याज्ञवल्क्य। विदेहराज जनक, काशीनरेश अजातशत्रु, सभी उनका आदर करते थे, उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। उनमें याज्ञवल्क्य-स्मृति प्रधान है। वे योगशास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद और धनुर्वेद के भी आचार्य थे। वे वैदिक संस्कारों के श्रेष्ठ ऋषि थे और बड़े सुख के साथ अपने आश्रम में रहते थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं–मैत्रेयी और कात्यायनी। उस समय सभी ऋषि-मुनि गृहस्थ हुआ करते थे। वे संसार को छोड़ने में विश्वास नहीं करते थे। संसार में रहकर ही तपस्या करते और समय पर संन्यासी हो जाते थे। याज्ञवल्क्य ऋषि ने भी एक दिन संन्यासी होने का विचार किया। तब उन्होंने अपनी पत्नी मैत्रेयी को बुलाया। बोले, ''मैत्रेयी, मैं संन्यास लेना चाहता हूँ, इसलिए चाहता हूँ कि जो कुछ मेरे पास है वह तुम दोनों में बाँट दूँ।''

कात्यायनी सीधी-सादी स्त्री थी। वह पति को ही सब कुछ समझती थी। उनकी सेवा करने में ही सुख मानती थी। लेकिन मैत्रेयी विचारशीला थी। विदुषी थी। कात्यायनी सम्पत्ति का हिस्सा लेने को तैयार हो गई लेकिन मैत्रेयी ने कहा, ''हे स्वामी, मुझे बहुत धन मिला। लेकिन क्या यही सच्चा सुख है ?''

पत्नी की यह बात सुनकर याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुए। बोले ''मैत्रेयी ! तुम सच कह रही हो। धन से सच्चा सुख नहीं मिल सकता। धन पाकर तुम विलासी बन सकती हो, लेकिन तुम्हें मुक्ति नहीं मिल सकती।''

मैत्रेयी बोली, ''यदि धन से सुख नहीं मिल सकता तो मैं उसे लेकर क्या करूँगी ! आप जानते हैं कि मुक्ति कैसे मिल सकती है। वही ज्ञान मुझे दीजिए।''

तब याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को वह ज्ञान दिया जिससे मुक्ति मिलती है। उनके ज्ञान का सार था, ''मनुष्य को 'मैं' और 'तुम' का भेद मिटा देना चाहिए। सारा संसार हमारा है मनुष्य मात्र एक है। सारे विश्व से जो प्रेम करते हैं वही प्रेमी हैं। इसलिए हे मैत्रेयी, आँखें जिसे-जिसे देखें उसी में परमात्मा को देखने का प्रयत्न करना चाहिए।''

यह ज्ञान पाकर मैत्रेयी बहुत प्रसन्न हुई। याज्ञवल्क्य अपनी दोनों पत्नियों पर कुटुम्ब का भार छोड़कर संन्यासी हो गए। वे नाना ग्रन्थों की रचना करने लगे और नाना प्रकार का ज्ञान संसार को देने लगे।

सरल बालोपयोगी कहानियां

सूखा गुलाब	शिवानी
राधिका सुन्दरी	शिवानी
स्वामीभक्त चूहा	शिवानी
बिन्दो का लड़का	शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय
आनन्द मठ	बंकिम चन्द्र
अक्ल बड़ी या भैंस	अमृतलाल नागर
नटखट चाची	अमृतलाल नागर

प्रेमचन्द की सरल, सचित्र बाल कहानियां

बूढ़ी काकी
बड़े घर की बेटी
सुजान भगत
परीक्षा
शतरंज के खिलाड़ी
दो बैलों की कथा
मां की ममता
शिकारी राजकुमार
गुल्ली-डण्डा
रानी सारंधा
नमक का दरोग़ा
रामलीला
पंच परमेश्वर
मन्दिर
ईद का त्यौहार
सब से बड़ा तीर्थ
कुत्ते की कहानी
मेरी कहानी
रामकथा
जंगल की कहानियां

रवीन्द्रनाथ टैगोर की सरल बाल कहानियां

भोला राजा
काबुलीवाला
पारसमणि
मास्टरजी
तोते की कहानी
राजा का न्याय

ISBN 81-7028-414-7
9 788170 284147

राजपाल